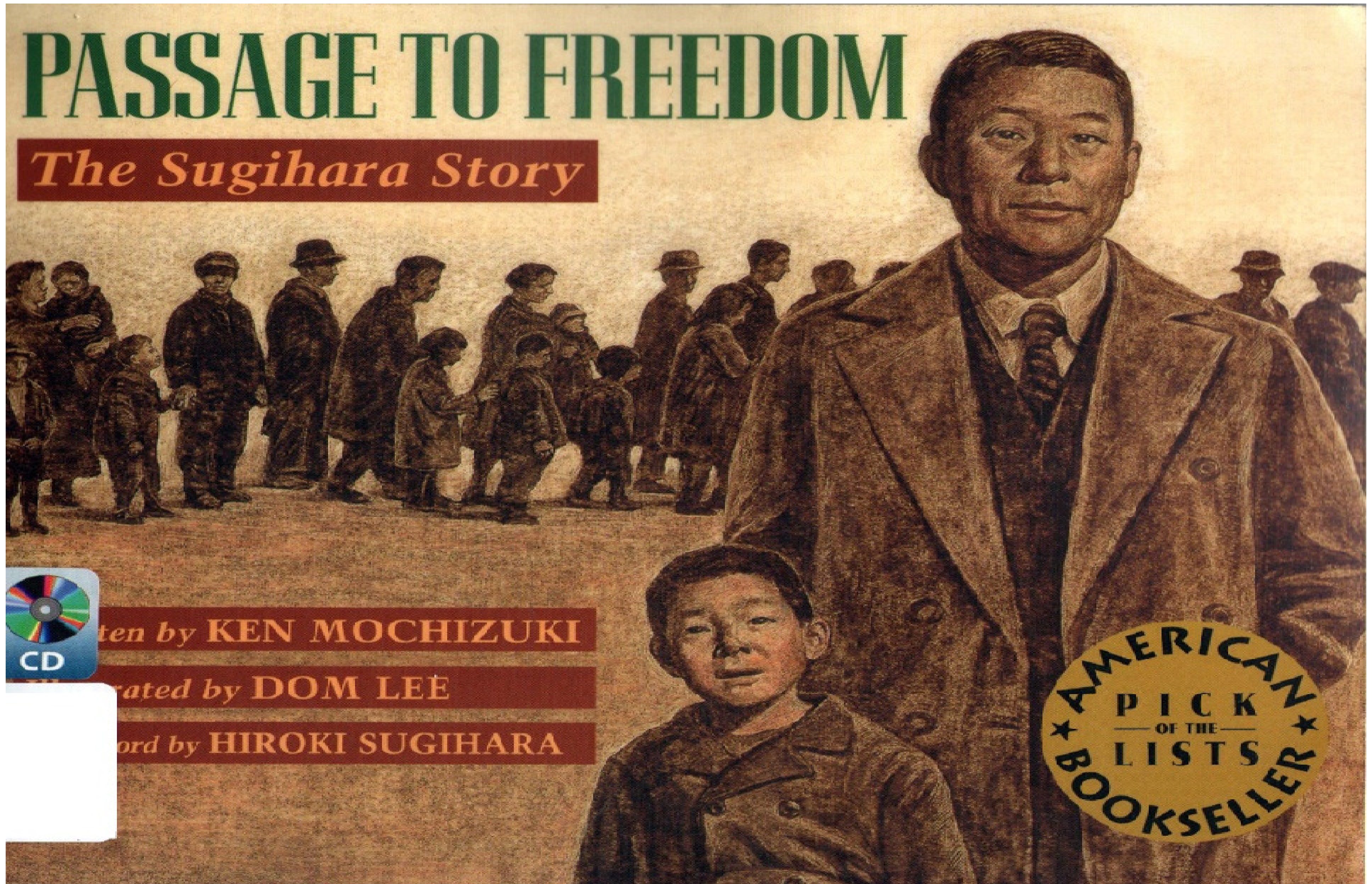
आज़ादी की डगर - सुगिहारा की कहानी

केन मोचिज़ुकी, चित्र: डोम ली



आज़ादी की डगर - सुगिहारा की कहानी

केन मोचिजुकी, चित्र: डोम ली, हिंदी: विदूषक

PASSAGE TO FREEDOM

The Sugihara Story



Written by Ken Mochizuki
Illustrated by Dom Lee
Afterword by Hiroki Sugihara

यह पुस्तक समर्पित है चिउने सुगिहारा और उनके परिवार को, और ऐसे लोगों को जो दूसरों के भले को, खुद के स्वार्थ से पहले प्राथमिकता देते हैं. मैं हिरोकी सुगिहारा का विशेष रूप से आभारी हूँ. उन्होंने मेरे साथ घंटों बिताए और इस कहानी को सुनाया - केन मोचिजुकी

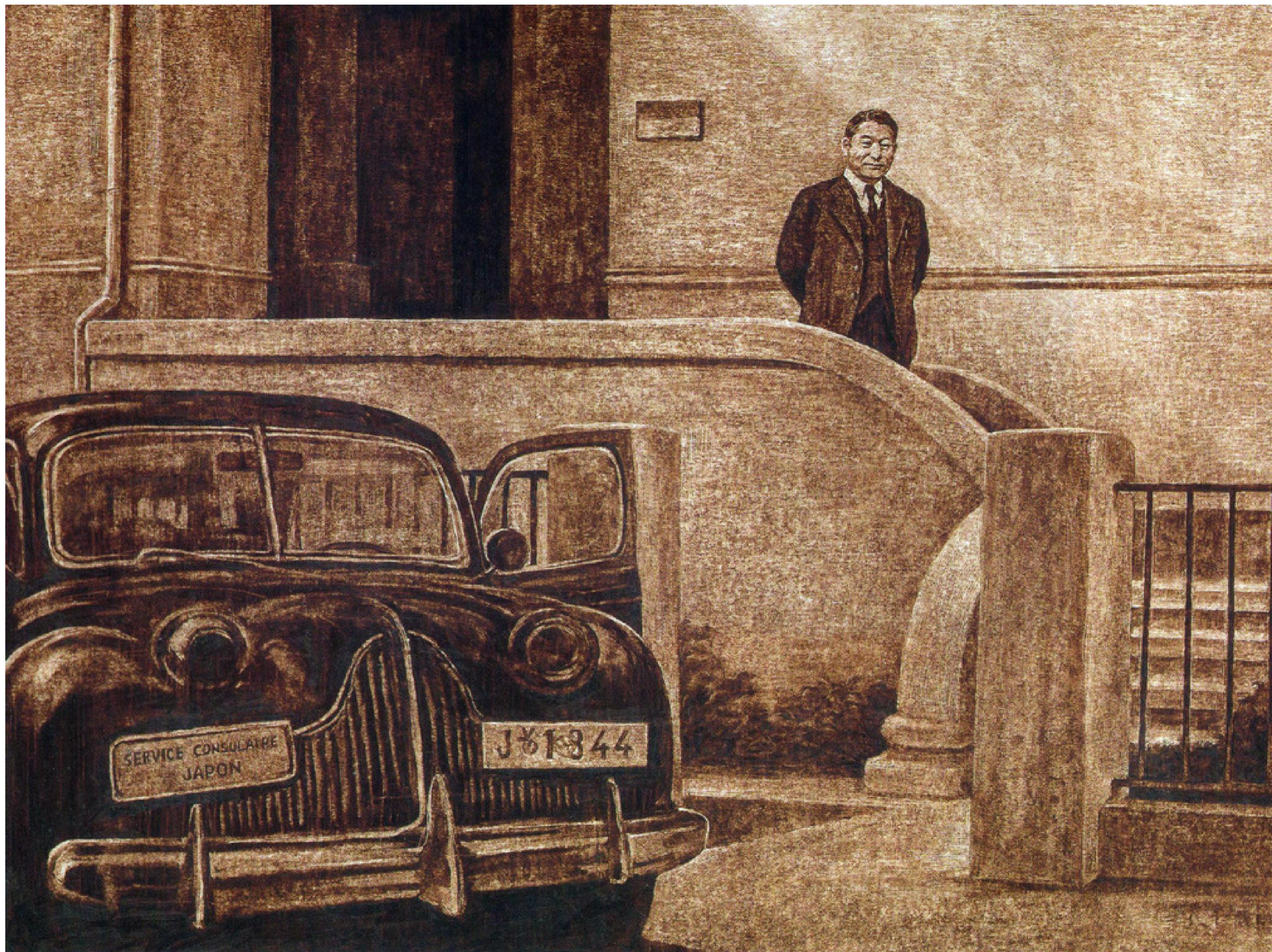
मुक्ति और शान्ति के लिए लड़ने वाले हर इंसान के लिए - डोम ली



एक कहावत अनुसार किसी इंसान की आँखें उसके बारे में सब कुछ बता देती हैं.

दुकान में मेरे पिता को एक यहूदी लड़का मिला. वो जो खरीदना चाहता थे उसे खरीदने के लिए उसके पास पैसे नहीं थे. तब पिताजी ने अपने बटुए से उसे कुछ पैसे दिए. उस लड़के ने मेरी पिता की आँखों में झाँककर देखा. बाद में उसने पिताजी को अपने घर आमंत्रित किया.

इस तरह अपने परिवार के साथ, मैंने पहली बार यहूदी पर्व - हनुक्का का जश्न मनाया. उस समय मेरी उम्र पांच साल की थी.


SERVICE CONSULAIRE
JAPON



1940 में मेरे पिता राजनयिक और एक जापानी प्रितिनिधि थे. हमारा परिवार एक छोटे देश लिथुआनिया के एक छोटे से शहर में रहता था. परिवार में माता-पिता के साथ मेरी मौसी सेत्सुको, छोटा भाई चिआकी और तीन-महीने का शिशु भाई हारुकी रहता था. पिताजी का ऑफिस घर के बिलकुल नीचे था.



सुबह के समय पेड़ों पर चिड़िए चहचहाती थीं. हमारे घर के पास ही एक बड़ा पार्क था. वहाँ हम पास-पड़ोस के लड़के-लड़कियों के साथ खेलते थे. हमारे घर के आसपास के अन्य मकान और चर्च, सैकड़ों साल पुराने थे. मैं और चिआकी घर में दिन भर खिलौनों से खेलते – सिपाही, टैंक और हवाईजहाज़ों से. यह सभी खिलौने जर्मनी में बने थे. हमें इस बात को कोई एहसास नहीं था कि असली जर्मन सैनिक जल्दी ही हमारी ज़िन्दगी में प्रवेश करने वाले थे.

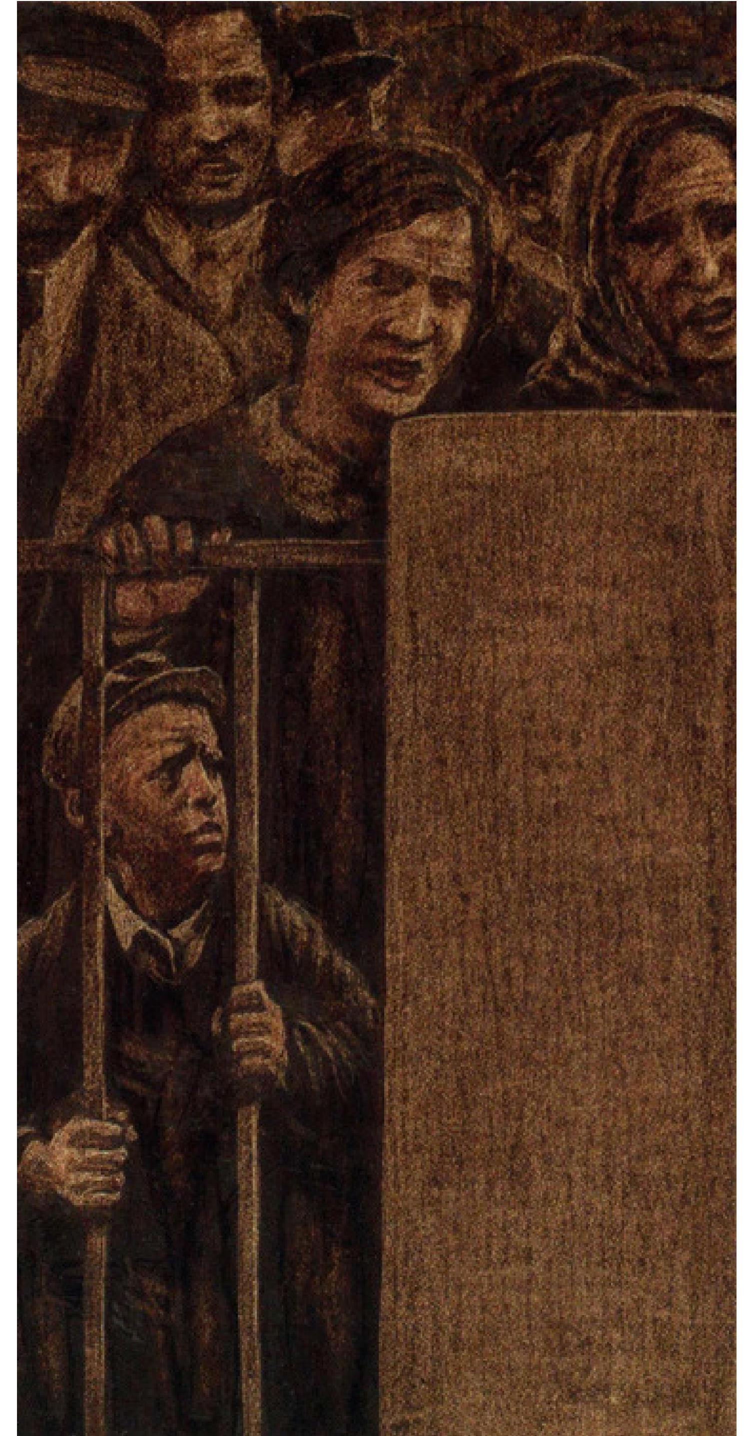
फिर एक दिन जुलाई की सुबह को, मेरी ज़िन्दगी हमेशा के लिए बदल गई.

माँ और मौसी सेत्सुको ने मुझे और चिआकी को झकझोर के जगाया, और हमसे जल्दी तैयार होने को कहा. मेरे पिता अपने ऑफिस से दौड़े-दौड़े ऊपर आए.

“बाहर बहुत से लोग खड़े हैं,” माँ ने कहा. “कुछ पता नहीं कि अब आगे क्या होगा?”

माता-पिता ने हम बच्चों को खिड़की में से झाँकने को मना किया. उन्हें डर था कि कोई बाहर से हमें देख न ले. इसलिए मैंने परदे की छोटी झिरी में से बाहर झाँका. घर के बाहर मुझे सैकड़ों लोगों की भीड़ खड़ी दिखाई दी.

कुछ बड़े लोग, पोलिश जुबान में जोर-जोर से कुछ चिल्ला रहे थे. पोलिश भाषा मुझे समझ में नहीं आती थी. उस भीड़ में मुझे कई बच्चे भी दिखाई दिए. वो लोहे के मज़बूत गेट के सीखचों से, हमारे घर को, घूर-घूर कर देख रहे थे. उनमें से कुछ बच्चे मेरी उम्र के थे. कई रात सो नहीं पाने के कारण बड़ों की तरह, बच्चों की आँखें भी सूजकर लाल हो गयीं थीं. वे सर्दियों के मोटे कोट पहने थे – कुछ लोग तो एक-के-ऊपर दूसरा कोट तक पहने थे. वैसे बाहर गर्मी थी और मौसम सुहाना था. ऐसा लगता था जैसे बच्चों ने बहुत जल्दबाजी में कपड़े पहने हों. पर अगर वे लोग कहीं दूर से आए थे तो फिर उनके सूटकेस कहाँ थे?





"वो लोग क्या चाहते हैं?" मैंने अपनी माँ से पूछा.

"वो तुम्हारे पिता की मदद लेने के लिए आए हैं," माँ ने उत्तर दिया. "अगर हम उनकी सहायता नहीं करेंगे तो हो सकता है कि वो मारे जाएँ या फिर कुछ दुष्ट लोग उन्हें बंदी बना लें."

बहुत से बच्चों ने अपने पिता के हाथ को कस के पकड़ा था, कुछ बच्चे अपनी माओं से चिपके थे. एक छोटी बच्ची ज़मीन पर बैठी लगातार रो रही थी.

उसे देखकर मुझे भी रोना आने लगा. "पिताजी," मैंने कहा, "कृपा उनकी मदद करें."

पिताजी चुपचाप मेरे पास खड़े रहे. मेरे सामने ही उन्होंने नीचे खड़े बच्चों को देखा था.

फिर भीड़ में से कुछ आदमी हमारे घर की चारदीवारी पर ऊपर चढ़ने लगे. बोरसिलाव और गुद्जे दो युवा, पिताजी के साथ काम करते थे. उन्होंने भीड़ को शांत करने की कोशिश की.

पिताजी कमरे से बाहर निकले. मैंने परदे से झांकते हुए उन्हें, सीढ़ियों पर खड़े हुए देखा. उन्होंने भीड़ में से पांच लोगों को, बातचीत के लिए अन्दर अपने ऑफिस में बुलाया.



पिताजी उन पाँच लोगों से, नीचे स्थित अपने दफ्तर में मिले. पिताजी पांच भाषाएँ जानते थे – जापानी, चीनी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच और इंग्लिश. इस मीटिंग में सब लोग रूसी में ही बोले.

मैं बस लगातार खिड़की से नीचे की ओर की भीड़ को देखता रहा. पिताजी दो घंटों तक उन लोगों की भयावय कहानियाँ सुनते रहे. वे सभी लोग शरणार्थी थे – वे लोग अपने घरों से भागकर आए थे, क्यूंकि अगर वो वहीँ रहते तो वो ज़रूर मार दिए जाते. वे लोग पोलैंड के यहूदी थे. क्यूंकि हिटलर ने पोलैंड पर कब्ज़ा कर लिया था इसलिए नात्ज़ी सैनिकों से बचने के लिए वे अपने देश से पलायन करने को मजबूर थे.

उन लोगों ने सुना था कि पिताजी उन्हें किसी दूसरे देश में यात्रा करने के लिए अनुमति –यानि वीसा दे सकते थे. वो सैकड़ों यहूदी शरणार्थी रूस से होते हुए, जापान जाने के इच्छुक थे. जापान पहुँचने के बाद वे किसी अन्य देश में जा सकते थे. क्या यह सच में संभव होगा? उन लोगों ने पूछा. क्या पिताजी ऐसी यात्रा के लिए उन्हें वीसा दे पाएंगे? अगर पिताजी यह नहीं करते, तो जल्द ही नात्ज़ी सैनिक उन्हें क़त्ल कर देते.

पिताजी ने कहा कि वो कुछ लोगों को तो वीसा दे सकते थे, पर सैकड़ों को नहीं. उसके लिए उन्हें जापानी सरकार से अनुमति लेनी होगी.



उस रात भीड़ हमारे घर के बाहर ही रुकी. दिन भर के तहलके के बाद मैं थक कर चूर हो गया था, इसलिए मैं गहरा सो गया. पर पिताजी की ज़िन्दगी की वो सबसे बदतर रात थी. उन्हें जल्दी ही कोई बड़ा निर्णय लेना था. शरणार्थियों की मदद करने से, कहीं उनके परिवार को तो कोई खतरा नहीं पैदा होगा? अगर नत्ज़ियों को इसका पता चला तो फिर वो क्या करेंगे?

पर अगर पिताजी उनकी मदद नहीं करते तो वे सभी मारे जाते.

पिताजी को पूरी रात एक पल नींद नहीं आई और वो करवटें बदलते रहे. माँ ने उनके पलंग के चरमराने की आवाजें सुनीं.

अगले दिन पिताजी ने बताया कि वो जापानी सरकार से सैकड़ों वीसों के बारे में पूछेंगे. माँ को यह रास्ता सही लगा. पिताजी ने जापानी सरकार को अपना सन्देश, टेलीग्राम के ज़रिए भेजा. गुद्जे पिताजी के लिखित सन्देश को, टेलीग्राफ दफ्तर लेकर गया.

मैं लगातार भीड़ तो देखता रहा. वे लोग अब जापानी सरकार के जवाब का इंतज़ार कर रहे थे. उस दिन वो पांच प्रितिनिधि हमारे घर में कई बार यह पूछने के लिए आए - कि उत्तर आया या नहीं? जब कभी गेट खुलता, भीड़ घर के अन्दर घुसने की कोशिश करती.



अंत में जापानी सरकार का उत्तर आया. उत्तर साफ़ "न" में था. जापान जाने के लिए इतने सारे लोगों के विसे पिताजी इशू नहीं कर सकते थे. अगले दो दिनों तक पिताजी इसके बारे में सोचते रहे.

अब इस भीड़ में सैकड़ों और यहूदी शरणार्थी जुड़ गए. पिताजी ने जापानी सरकार को दुबारा सन्देश भेजा. दूसरी बार भी उत्तर "न" में ही मिला. हम लोग अभी भी घर से बाहर नहीं निकल सकते थे. मेरा छोटा भाई हारुकी, दूध की कमी के कारण अक्सर रोता था.

घर में अन्दर घुसे-घुसे मैं तंग आ गया था. मैं बार-बार पिताजी से पूछता था, "यह लोग यहाँ क्यूं आए हैं? वो क्या चाहते हैं? वो यहाँ आने को क्यूं मजबूर हुए? वे सब कौन हैं?"

पिताजी समय निकालकर मुझे हर चीज़ संभाल कर समझाते थे. उन्होंने कहा कि वे लोग शरणार्थी थे और उनकी मदद चाहते थे, जिससे कि वे दुनिया के किसी अन्य हिस्से में जा सकें और वहां सुरक्षित रह सकें.

"अभी तो मैं इन लोगों की कोई मदद नहीं कर सकता," उन्होंने शांत स्वर में मुझसे कहा. "पर जब मौका आएगा तो मैं उनकी भरसक सहायता करूंगा."

उसके बाद पिताजी ने अपने वरिष्ठ अधिकारियों को तीसरा सन्देश भेजा. उसका जवाब क्या आया, वो पिताजी की आँखें, देखकर ही मैं समझ गया. उस रात पिताजी ने माँ कहा, "मुझे कुछ करना ही होगा. शायद मुझे अपनी सरकार की आज्ञा का उल्लंघन करना होगा. अगर मैंने वो नहीं किया तो वो ईश्वर के आदेश का उल्लंघन होगा."



उस दिन पिताजी ने पूरे परिवार को इकट्ठा किया और उनकी राए जाननी चाही. ज़िन्दगी में यह पहला मौका था जब पिताजी ने हम सबसे मिलकर मदद मांगी.

माँ और मौसी सेत्सुको ने तो पहले ही अपना मन बना लिया था. उन्होंने कहा कि हमें खुद के बारे में सोचने से पहले, बाहर खड़े लोगों के बारे में सोचना चाहिए. यही बात मेरे माता-पिता ने मुझे हमेशा सिखाई थी – मुझे हमेशा दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण से चीज़ों को देखना चाहिए. मान लो, अगर मैं नीचे खड़ी भीड़ में से एक बच्चा होता, तो फिर मैं दूसरों से क्या अपेक्षा करता?

मैंने पिताजी से पूछा, “अगर हम उनकी मदद नहीं करेंगे, तो क्या वो मर जायेंगे?”

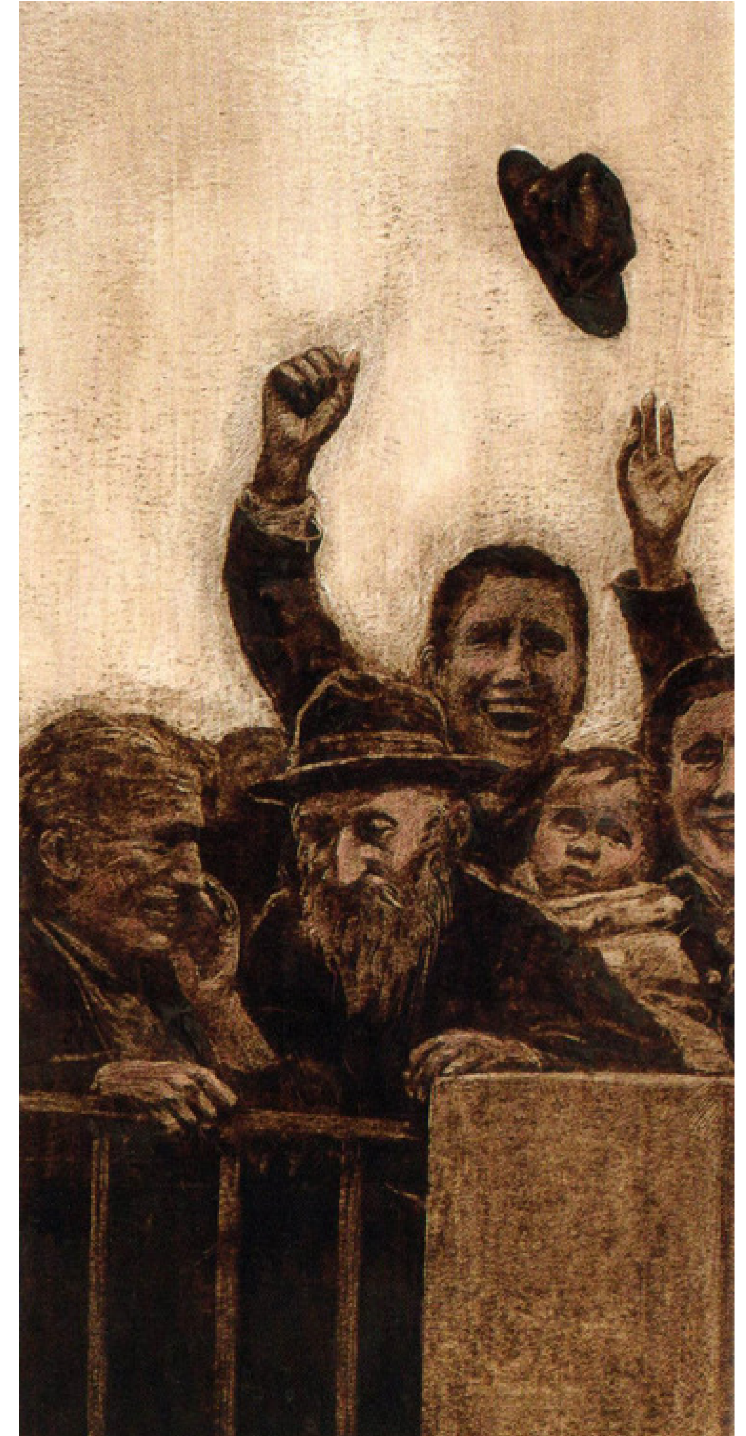
पूरे परिवार की सहमति मिलने के बाद मुझे लगा, जैसे पिताजी के कन्धों से कोई भारी बोझ उठ गया हो. फिर उन्होंने दृढ शब्दों में हम सबसे कहा, “मैं अब इन लोगों की मदद करना शुरू करूंगा.”



बाहर जब पिताजी बोलने के लिए निकले तो भीड़ एकदम शांत हो गई. पिताजी के कही बात को बोरिस्लाव ने, भीड़ के सामने अनुवाद करके सुनाया.

"मैं आपमें से हरेक को, वीसा दूंगा. कोई भी बिना वीसा, वापिस नहीं जाएगा. इसलिए आप लोग सब्र और शांति से इंतज़ार करें."

एक सेकंड के लिए तो भीड़ स्तंभित रह गई. किसी को कुछ समझ ही नहीं आया. उसके बाद शरणार्थी ख़ुशी से चिल्लाने लगे. बड़े लोग, एक-दूसरे से गले मिले और बहुत से लोगों ने आसमान की ओर हाथ उठाकर ऊपर वाले को दुआएं दीं. माताओं-पिताओं ने अपने बच्चों को गले लगाया और चूमा. मुझे सबसे ज्यादा ख़ुशी बच्चों को देखकर हुई.





जब पिताजी ने गैरिज का दरवाज़ा खोला तो भीड़ ने अन्दर घुसने की कोशिश की. व्यवस्था बनाए रखने ने लिए बोरीस्लाव ने लोगों को नंबर वाले कार्ड दिए. पिताजी ने हरेक व्यक्ति का वीसा खुद अपने हाथ से लिखा. हरेक वीसा देने के बाद वो उस व्यक्ति की आँखों में झांकते और उससे कहते, “आपकी यात्रा सफल हो!”









शरणार्थी हमारे पसंदीदा पार्क में ही डेरा डाले थे. वहीं से वे पिताजी से मिलने और वीसा लेने आते. कई दिनों के बाद मैं फिर से पार्क में जा पाया.

चिआकी और मैं अन्य बच्चों के साथ अपनी खिलोनों वाली मोटर कार से खेले. पहले हम गाड़ी में बैठे और दूसरे बच्चों ने उसे धक्का दिया. फिर दूसरे बच्चे गाड़ी में बैठे, और हम दोनों ने उन्हें धक्का दिया. हम लोग मिलकर पेड़ों के चारों ओर गोल-गोल दौड़े. हमें एक-दूसरे की भाषा समझ नहीं आई, पर उससे हमारे खेल में कुछ फर्क नहीं पड़ा.

उसके बाद एक महीने तक हमारे गैराज के सामने रोज़ाना, लोगों की लाइन लगती. पिताजी रोज़, सुबह से शाम तक, करीब 300 वीसे अपने हाथ से लिखते थे. स्याही ख़त्म होने के डर से, वो उसमें कुछ पानी मिला देते थे. गुद्ज़े और एक युवा यहूदी आदमी, हरेक वीसा पर पिताजी के नाम का सरकारी मोहर लगाते थे.

पिताजी की मदद के लिए माँ ने खुद अपने हाथ से वीसा लिखने की बात कही. पर पिताजी ने सभी वीसे, खुद अपने हाथ से लिखे. उन्हें डर था कि कहीं कोई व्यक्ति मुश्किल में न पड़ जाए. फिर माँ लम्बी कतार को देखतीं रहतीं और पिताजी को बकाया लोगों की गिनती बतातीं.

एक दिन पिताजी ने अपने फाउंटेन पेन को इतना दबा कर लिखा कि उसकी निब ही टूट गई. उस पूरे महीने मैंने पिताजी को बहुत देर रात को ही घर आते देखा. नींद के अभाव में उनकी ऑखें हमेशा लाल रहती थीं और वो बहुत कम ही बोल पाते थे. जब वो सोने जाते तो माँ काफी देर तक उनके थके हाथ की मालिश करती थीं.

कुछ दिनों में पिताजी वीसा लिखते-लिखते एकदम परेशान हो गए. पर माँ ने उन्हें वीसा लिखने के लिए लगातार प्रोत्साहित किया. “बहुत से लोग अभी भी इंतज़ार कर रहे हैं,” वो कहतीं. “हम अपनी तरफ से अधिक-से-अधिक वीसा इशू करेंगे जिससे ज्यादा-से-ज्यादा लोगों की ज़िन्दगी बच सके.”



लिथुआनिया में जर्मन सैनिक पश्चिम से आए पर रूसी फौज पूर्व से आई. फौज ने पिताजी को लिथुआनिया छोड़ने का आदेश दिया. जापानी सरकार ने भी पिताजी को लिथुआनिया छोड़ने और जर्मनी जाने का आदेश दिया. पर घर छोड़ते समय, बिलकुल अंत तक, पिताजी लगातार वीसे लिखते रहे. हम लोग किसी होटल में दो दिनों तक रुके. वहां भी शरणार्थियों ने पिताजी का पीछा नहीं छोड़ा. होटल में भी पिताजी वीसे लिखते रहे.



फिर परिवार के लिथुआनिया, छोड़ने का वक़्त आया. जो शरणार्थी स्टेशन पर अड्डा डाले थे, उन्होंने पिताजी को घेर लिया. कुछ अन्य शरणार्थियों ने पिताजी की सुरक्षा के लिए उनके चारों ओर घेरा बनाया. अब पिताजी ने सिर्फ अपने दस्तखत और मोहर लगाकर अनुमति के कागज़ बांटने शुरू किए.

जैसे ही हमारी ट्रेन शुरू हुई वैसे-वैसे शरणार्थी भी उसके साथ-साथ दौड़े. पिताजी ने अंत तक, रेल डिब्बे की खिड़की से अनुमति के कागज़ बांटे. जब ट्रेन ने स्पीड पकड़ी तब उन्होंने भागते शरणार्थियों के हाथों में बाकी बचे कागज़ भी पकड़ा दिए. आगे खड़े लोगों ने पिताजी की आँखों में झाँका और वे रोने लगे. “हम आपका एहसान कभी नहीं भूलेंगे! हम आपसे ज़रूर दुबारा मिलेंगे!”

मैंने ट्रेन की खिड़की के बाहर नज़र डाली. ट्रेन, लिथुआनिया और शरणार्थियों को पीछे छोड़कर तेज़ी से दौड़ रही थी. क्या हम यहाँ कभी दुबारा वापिस आएँगे? मैं अचरज कर रहा था.

“हम कहाँ जा रहे हैं?” मैंने पिताजी से पूछा.

“हम लोग बर्लिन जा रहे हैं,” उन्होंने उत्तर दिया.

चिआकी और मैं बड़े उत्साहित थे क्यूंकि हम एक बड़े शहर में जा रहे थे. मेरे दिमाग में तमाम प्रश्न उठ रहे थे जो मैं पिताजी से पूछना चाहता था. पर अपनी सीट पर आराम से बैठते ही पिताजी को तुरंत नींद आ गई. माँ और सेत्सुको मौसी भी बहुत थकी लग रही थीं.


361
FWAGEN



उस समय मेरे परिवार ने क्या किया, और जो किया वो कितना महत्वपूर्ण था, मैं उस बात को पूरी तरह नहीं समझ पाया था.

पर अब मैं उसके महत्व को समझता हूँ.

अंत के दो शब्द

पिताजी ने 1940 में, कुअनस, लिथुआनिया में जो कुछ किया, उसके बारे में मैं जब भी सोचता हूँ तब उस घटना के बारे में मेरी समझ और गहरी होती है. पिताजी ने अपने नेक काम से हजारों लोगों की ज़िंदगी बचाई, यह सोच कर ही मैं बहुत भावुक हो उठता हूँ. मैं खुद भी उसमें सहभागी था, यह सोचकर मैं पुलकित हो जाता हूँ.

मुझे इस बात का बहुत गर्व है कि पिताजी ने हिम्मत और साहस से उचित काम किया. हाँ, यह सही था कि सरकार में ऊंचे अफसर उनसे असहमत थे. कुअनस छोड़ने के बाद मेरे परिवार के कई साल, काफी मुश्किल में बीते. हमें 18 महीनों तक एक सोवियत बंदीगृह में गिरफ्तार करके रखा गया. अंत में जब हम जापान लौटे, तो वहां पिताजी को अपने राजनयिक पद से इस्तीफ़ा देने को मजबूर किया गया. कई अन्य नौकरियों के बाद पिताजी ने, अंत में एक एक्सपोर्ट कंपनी में नौकरी की, जहाँ से वो 1976 में रिटायर हुए.

पिताजी हमेशा उन शरणार्थियों के बारे में सोचते रहते थे. एक बार इत्तिफाक से वो, जापान स्थित, इसरायली एम्बेसी में, अपना नाम और पता छोड़ आए. 1960 के बाद से उन्हें "सुगिहारा-सरवाईवर्स" के पत्र मिलने शुरू हुए. बहुत से लोगों ने पिताजी द्वारा दिए वीसा को बहुत संभाल कर रखा था, और वो मुड़ा-फटा कागज़ अब उनके पारिवारिक खजाने का, दर्ज़ा प्राप्त कर चुका था.

1969 में, पिताजी को इजराइल में आमंत्रित किया गया. वहां उन्हें मशहूर "होलोकास्ट-म्यूजियम" याड-वशेम ले जाया गया. 1985 में उन्हें याड-वशेम ने "राईटइयस अमोंग नेशनस" पुरुस्कार से नवाज़ा. इस सम्मान को पाने वाले वो एक मात्र एशियाई थे.

1992 में, उनकी मृत्यु के 6 बरस बाद, पिताजी के जन्मस्थल योत्सू जापान में, पहाड़ी पर उनकी याद में एक स्मारक बनाया गया. अब यह पहाड़ी "मानवता की पहाड़ी" के नाम से मशहूर है. 1994 में, कुछ "सुगिहारा-सरवाईवर्स" उस स्मारक को पुनः समर्पित करने के लिए जापान आए. उस समारोह में जापानी सरकार के कई उच्च अधिकारी भी शामिल हुए.

1940 में, इस कहानी को मेरे पिता और उनके परिवार ने अनुभव किया. इस कहानी में आज के बच्चों और युवकों के लिए भी कई सन्देश छिपे हैं. शायद यह कहानी आपको भी, लोगों का आदर और जीवन की देखभाल करने के लिए प्रेरित करे. कहानी यह भी सिद्ध करती है कि - अकेला इंसान भी परिवर्तन ला सकता है.

धन्यवाद

हिरोकी सुगिहारा

$7.95
Higher in Canada

it



शिकारी भी अपने शरण में आई चिड़िया को नहीं मार सकता है. – जापानी कहावत